अगस्त १९९९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म कथन

असीम उपकार; असीम कृतज्ञता

परम पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन के आदेशानुसार उनके प्रतिनिधि के रूप में भारत में और विश्व के अन्यान्य देशों में धर्मदूत का दायित्त्व निभाते हुए तीस वर्ष पूरे हुए। पूज्य गुरुदेव की यह प्रबल धर्मकामना थी कि भारत विपश्यना की अनमोल निधि को पुनः प्राप्त कर स्वयं कल्याणलाभी हो और इसे विश्व व्यापी बना कर विश्व कल्याण में सहायक बने। यह स्वप्न पूरा होने में अभी समय लगेगा। लेकिन काम आरंभ तो हुआ। देश और विदेश के प्रबुद्ध लोगों ने इस विद्या को स्वीकार कर इसे सहर्ष अपनाया है। इससे लाभान्वित हुए हैं। हजारों साधक-साधिकाएं विश्व कल्याण हित धर्मसेवा में निष्ठा और लगन के साथ जुट गये हैं। यह सब देख कर संतोषभरी शांति अनुभव होती है। मनमानस आह्लाद-प्रह्लाद की सुखद उर्मियों से उर्मिल हो उठता है। रोम-रोम रोमांचित हो उठता है।

ऐसी अवस्था में बहुधा मानस पटल पर एक पर एक पावन दृश्य चलचित्र की भांति उभरते हैं, चलायमान होते हैं। भावविभोर हृदयकमल असीम कृतज्ञता और श्रद्धा के भावों से आप्लावित परिप्लावित हो उठता है।

(१)

एक दृश्यः

भगवान दीपंकर सम्यक संबुद्ध के चरणों के पास युवा तपस्वी ब्राह्मण सुमेध बैठा है। चेहरे पर पवित्र ब्रह्माचरण का अनुपम तेज है। वक्ष पर पहने बल्कल वस्त्र और कटि पर बँधे मृगचर्म पर अभी-अभी लगा कर्दम-कीचड़ उस घटना को उद्घाटित करता है जब कि भगवान के चरण मैले न हों इसलिए यह युवक कीचड़ पर लेट गया था ताकि भगवान उसके शरीर पर पांव रख कर कीचड़भरी भूमि को लांघ जायँ। युवा तपस्वी के नयनों में श्रद्धा का सागर उमड़ रहा है। विनम्र, विनीत, पलकें झुकी हुई हैं। भगवान दीपंकर के कथन से वह जान गया है कि उसने जितनी पुण्य पारमिताएं संचित कर रखी हैं वे उसे इसी जीवन में विमुक्त कर सकने में समर्थ हैं। वह इस कथन से प्रभावित नहीं दीखता। उसके मानस में करुणा का प्रबल संवेग जागा हुआ है कि केवल अकेले मेरे भव-तीर्ण हो जाने से क्या होगा? क्यों न मैं इन भगवान दीपंकर की भांति सम्यक संबुद्ध बनूं ताकि अनेकों की मुक्ति में सहायक बन सकूं। यह सच्चाई भी उसने भलीभांति समझ ली है कि सम्यक संबुद्ध बनने के लिए दस सामान्य पारमिताओं के अतिरिक्त अन्य दस उपपारमिताएं और दस परमत्थ पारमिताएं –यों तीस पारमिताओं की परिपूर्ति आवश्यक है और इस निमित्त असंख्य कल्पों के असंख्य जन्मों में यथाशक्ति लोक कल्याण करते हुए भवभ्रमण करना होता है। इस कठिनाई को भलीभांति समझते हुए भी हाथ आयी मुक्ति का परित्याग करके उस युवा योगी ने सुदीर्घ भवभ्रमण का अटल अविचल संकल्प किया। त्रिकालदर्शी भगवान दीपंकर से उसे आशीर्वाद प्राप्त हुआ और परिणाम स्वरूप उसमें बोधि का बीज पड़ा। वह बुद्धंकुर बना, बोधिसत्व बना। एतदर्थ असंख्य जन्मों के भवभ्रमण का कष्टसहन करते हुए तीसों पारमिताओं की परिपूर्ति कर उसने पावन हिमालय की गोद में आज के नेपाल देश की पवित्र भूमि लुंबिनी में शाक्यकुल की महारानी महामाया की कोख से सिद्धार्थ गौतम के नाम से जन्म लिया।

बोधिसत्व का यह अंतिम जन्म है। उसे सम्यक संबुद्ध बनना है। ऐसे बुद्धंकुर का जन्म किसी ऐसे युग में होता है जब कि मुक्तिदायिनी भगवती विपश्यना विद्या लोक में विलुप्त हो चुकी होती है। उसे अपने ही परिश्रम पुरुषार्थ से यह पुरातन विद्या खोजनी होती है। यह खोज घर बैठे नहीं हो सकती। अतः २९ वर्ष की युवावस्था में समस्त राजसी सुख-सुविधाएं और वैभव विलास, अनिंद्य सुंदरी कोलीयधीता धर्मपत्नी यशोधरा और नवजात पुत्र राजकुमार राहुल का त्याग करके परम सत्य की खोज में निकल पड़ा। उन दिनों के प्रचलित आठों ध्यानों में शीघ्र ही पारंगत हो जाने पर भी जब भवमुक्त अवस्था प्राप्त नहीं हुई तब लगभग छह वर्षों तक कठोर देह-दंडन का निष्फल निरर्थक तप किया। तदनंतर इसे त्याग कर अपनी संचित पारमिताओं के बल पर भवविमुक्ति का सही मार्ग ढूंढ निकाला। बोधिसत्व सम्यक संबुद्ध बने। भवमुक्त हुए।

यह वैशाखी पूर्णिमा थी। दो महीने पश्चात आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सदियों बाद शुद्ध धर्मचक्र का पुनः प्रवर्तन हुआ। असीम लोक कल्याण का सहज सरल राजमार्ग प्रशस्त हुआ। शील समाधि प्रज्ञा की शुद्ध धर्मगंगा प्रवाहमान हो उठी। इस अनुत्तर लोकगुरु की प्रथम धर्मदेशना के कारण वैशाखी पूर्णिमा सदा के लिए गुरुपूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध हुई। जीवन के शेष ४५ वर्ष उत्तर भारत के नगर-नगर में, गांव-गांव में पदयात्रा करते हुए करुणचित्त से मुक्तहस्त से धर्मसुधा बांटते रहे। महाकारुणिक की इस कल्याणी धर्मचारिका से अनेकों ने नितांत भवविमुक्त अवस्था प्राप्त की। अन्य अनेक इस भवदुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा पर आरूढ़ हो गतिमान हुए। उनके अनेक भवविमुक्त भिक्षु भी इसी प्रकार प्रभूत लोक कल्याण में जुट गये।

सोचता हूं इस खोई हुई विपश्यना विद्या की गवेषणा करके तथागत केवल स्वयं ही लाभान्वित होकर रह जाते, औरों को नहीं बांटते तो यह अनमोल विद्या हमें कैसे प्राप्त होती? पर कैसे नहीं बांटते? अनेकों के उद्धार के लिए ही तो उन्होंने इतना कष्टप्रद भव-भ्रमण किया था। अपनी मुक्ति तो उसी समय सहज सुलभ थी। सच है –

बहूनं वत अत्थाय उप्पज्जन्ति तथागता।

–सभी तथागत अनेकों के भले के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

सचमुच हम जैसे अनेकों के भले के लिए ही उन्होंने अगणित जन्मों तक इतने कष्ट उठाये। असीम है हम पर उनका उपकार,

असीम है उनके प्रति हमारी श्रद्धा, हमारी कृतज्ञता।

(२)

मानस पटल पर एक और चित्र उभरता है।

भगवान के परिनिर्वाण के तीन महीने पश्चात ५०० सत्य-साक्षी अरहंत भिक्षु राजगिरि की सप्तपर्णी गुहा में प्रथम धर्मसंगायन करते हैं और तथागत की अमृतवाणी को संशुद्ध रूप में कायम रखने की पावन परंपरा स्थापित करते हैं।

वे ऐसा न करते तो यह धर्मवाणी कब की विकृत होकर विलुप्त हो गयी होती। हमें शुद्ध रूप में कैसे प्राप्त होती? असीम है हम पर उनका उपकार, असीम है उनके प्रति हमारी श्रद्धा, हमारी कृतज्ञता।

(३)

और एक प्रेरक चित्र उभरता है –

देश का साम्राज्यलोलुप क्रूर हृदय सम्राट अशोक सौभाग्य से सद्धर्म के संपर्क में आया। विपश्यना विद्या से वह स्वयं लाभान्वित हुआ। भगवती विपश्यना के प्रभाव से उसका हृदय-परिवर्तन हुआ। समस्त विश्व के लिए यह एक अत्यंत कल्याणकारी ऐतिहासिक घटना घटी। चंड-अशोक धर्म-अशोक बना। अपनी प्रजा के प्रति उसमें असीम वात्सल्यभाव जाग उठा। उसके सत्प्रयत्नों से विपश्यना की धर्मगंगा सारे भारत में प्रवाहमान हो उठी।

केवल भारत ही क्यों? सारा विश्व इस कल्याणी विद्या से लाभान्वित हो, इस लोक-कल्याण की मंगल भावना से अभिभूत होकर उसने अपने गुरुदेव से इस निमित्त प्रार्थना की। गुरुदेव आचार्य भिक्षु मोग्गलिपुत्त तिस्स ने तीसरी संगीति का आयोजन किया। संपूर्ण बुद्धवाणी का पुनः समवेत संगायन हुआ। तत्पश्चात विदेशों में परियत्ति और पटिपत्ति – धर्मवाणी और विपश्यना विद्या बांटने के लिए धर्मदूत भेजे गये। धर्म का अनमोल उपहार देने के लिए अरहंत सोण और उत्तर अपने चंद साथियों सहित पड़ोसी देश स्वर्णभूमि पहुँचे। उस क्षेत्र में सद्धर्म का दीप-स्तंभ स्थापित हुआ, जिससे कि पास-पड़ोस के देशों में भी सद्धर्म की पुनीत ज्योति प्रकाशित हुई।

ऐसा न होता तो यह कल्याणी विद्या कैसे जीवित रहती? हमें कैसे उपलब्ध होती? असीम उपकार है हम पर धर्मराज सम्राट अशोक का, भदंत मोग्गलिपुत्त तिस्स का, अरहंत सोण और उत्तर का और असीम है उनके प्रति हमारी श्रद्धा, हमारी कृतज्ञता।

(४)

कुछ एक चलचित्र और उभरते हैं।

चंद सदियां बीतते-बीतते भारत ने सद्धर्म की शुद्धता खो दी। विपश्यना विद्या विकृत होती हुई सर्वथा विलुप्त हो गयी। धर्मसंगीति की परंपरा के कारण पड़ोस के कुछ देशों में धर्मवाणी तो सुरक्षित रही, पर प्रयोगात्मक विपश्यना विद्या वहां भी विलुप्त हो गयी। केवल म्यंमा ने धर्मवाणी और विपश्यना, दोनों को शुद्ध रूप में कायम रखा।

यदि पड़ोसी देश और वहां के संत इसे कायम नहीं रखते तो हमें यह कैसे प्राप्त होती? असीम उपकार है हम पर उस धर्मदेश का और वहां के संतों का, जिन्होंने सद्धर्म की पावन ज्योति सतत प्रज्वलित रखी। असीम है उनके प्रति हमारी श्रद्धा, असीम है हमारी कृतज्ञता।

(५)

एक चित्र और उभरता है।

आज से लगभग ९०० वर्ष पूर्व म्यंमा में भी यह शुद्ध विद्या केवल दक्षिण के छोटे-से मोन राज्य तक सीमित रह गयी। ताड़पत्रों पर लिखी हुई संपूर्ण तिपिटक साहित्य की कुछ एक प्रतियां वहां बची थीं। विपश्यना विद्या भी कायम थी। इसी कारण उस राज्य में कई लोग आर्य अवस्था लाभी थे। उनमें से कुछ एक अशैक्ष्य यानी अरहंत थे और बाकी शैक्ष्य यानी स्रोतापन्न अथवा सगदागामी अथवा अनागामी थे। वहीं एक अरहंत भिक्षु हुए – धम्मदस्सी। वे धर्मदर्शी ही नहीं थे, दीर्घदर्शी, दूरदर्शी भी थे। उन्होंने देखा कि मोन देश का राजा मनुआ अत्यंत दुर्बल है। पड़ोस का कोई भी धर्मविरोधी महत्त्वाकांक्षी प्रबल सम्राट इस पर आक्रमण करके इसकी स्वाधीनता ही नहीं छीन लेगा प्रत्युत यहां सुरक्षित परियत्ति और पटिपत्ति को भी विध्वंस कर देगा।

उन दिनों उत्तर की ओर पगान में राजा अनिरुद्ध (अनोरथ) के शासन में एक नई शक्ति उभर रही थी। उस ओर सर्वत्र सद्धर्म की शुद्धता धूल-धूसरित हो चुकी थी। वहां के धर्मगुरु धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैलाकर भोलीभाली जनता को ठगते थे और स्वयं दुःशील, दुराचार का अधम जीवन जीते हैं। सद्धर्म के पुनरुद्धार की प्रबल धर्मकामना लिए हुए अरहंत धम्मदस्सी पगान पहुँचे।

पगान नरेश अनिरुद्ध शूरवीर ही नहीं बुद्धिशाली भी था। अरहंत धम्मदस्सी की धर्मदेशना से उसे यह समझते देर नहीं लगी कि भगवान बुद्ध की सही शिक्षा क्या है। उसे यह स्पष्ट समझ में आ गया कि अपने आप को अरिय (आर्य) कहनेवाले यहां के ये धर्मगुरु अरिय नहीं बल्कि अरि हैं, सद्धर्म के दुश्मन हैं। धर्म का हनन कर रहे हैं। स्वयं धर्मभ्रष्ट हैं, लोगों को धर्मभ्रष्ट कर रहे हैं। दक्षिण के छोटे से मोन राज्य को छोड़ कर उत्तर की ओर सारे म्यंमा से मूल तिपिटक ही विलुप्त हो चुकी थी। व्यावहारिक विपश्यना का तो कोई नामलेवा भी नहीं रह गया था। उसके मन में प्रबल धर्मसंवेग जागा कि शील समाधि और प्रज्ञा की शुद्ध शिक्षा जिन धर्मग्रंथों में सुरक्षित है वे तिपिटक मोन राज्य से मँगवाये जायें और साथ-साथ कुछ एक वास्तविक आर्य भिक्षुओं को आमंत्रित किया जाय जो शुद्ध धर्म सुदेशित कर सकें।

परंतु मोन राजा मनुआ ने उसे अयोग्य पात्र समझ कर उसकी मांग ठुकरा दी। तब अनिरुद्ध ने सैन्यबल से मोन राज्य को जीत कर तिपिटक के ग्रंथ पगान मंगवा लिए और साथ में प्रबुद्ध भिक्षु शिक्षकों को भी ससम्मान बुलवा लिया। इस प्रकार पगान राज्य में धर्म के पुनर्जागरण का कार्य आरंभ हुआ। अरहंत धम्मदस्सी का स्वप्न साकार हुआ। उनकी धर्मप्रेरणा से शुद्ध धर्म, देश के उत्तर की ओर जन-जन में फैलने लगा। धर्म के दुश्मन अरिगुरुओं का मान-मर्दन हुआ। राजधानी पगान अरिमर्दनपुर के नाम से प्रसिद्ध

हुई।

जब पगान राज्य में सद्धर्म की पुनर्स्थापना सुदृढ़ हुई तब अरहंत धम्मदस्सी उत्तर की ओर धर्मप्रचार के लिए चल पड़े। जन-जन में शुद्ध धर्म जगाते हुए जब वृद्ध हो गये तब इरावदी के तट पर शांत सुरम्य सगाईं की पहाड़ियों में रहने लगे। वहां स्वयं भी साधना में रत रहते और कुछ एक योग्य पात्रों को भी विपश्यना विद्या में निपुण करते रहते। इस एक महान संत के प्रबल पुरुषार्थ के कारण शुद्ध सद्धर्म सारे म्यंमा देश में पुनः प्रसारित हुआ, जिसके दूरगामी शुभ परिणाम आए।

यदि ये महान धर्मध्वज अरहंत धर्मदर्शी धर्म की पुनर्स्थापना में अपना जीवन नहीं लगा देते तो विपश्यना साधना कैसे कायम रहती। हमें यह कैसे उपलब्ध होती। असीम उपकार है उन अरहंत धम्मदर्शी का हम पर और असीम है उनके प्रति हमारी श्रद्धा, हमारी कृतज्ञता।

(६)

और एक दृश्य उभरता है।

लगभग १५० वर्ष पूर्व म्यंमा की राजधानी मांडले में भिक्षु ञाणधज हुए जो कि समग्र पालि वाङ्मय के प्रकांड पंडित थे। सगाईं की पावन गुहाओं में परंपरागत चली आ रही विपश्यना विद्या का अभ्यास करके वे उसमें भी पारंगत हो गये। तदनंतर उत्तर स्थित मोंय्वा नगर के समीप लैडी नामक गांव की एक शांत सुरम्य स्थली में विहार बनवा कर साहित्य रचना में तथा विपश्यना के प्रशिक्षण में लग गये। उस गांव के विहार के नाम पर ही वे लैडी सयाडो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अरहंत धम्मदस्सी से लेकर अब तक यह विद्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी इने-गिने लोगों तक ही सीमित रही। भविष्यद्रष्टा महास्थविर लैडी सयाडोजी ने देखा प्रथम बुद्धशासन के २५०० वर्ष पूरे होने वाले हैं। अगला बुद्धशासन प्रज्ञा पर आधारित विपश्यना के प्रशिक्षण द्वारा ही जागेगा और सारे विश्व में फैलेगा। इस फैलाव में गृहत्यागी भिक्षुओं के अतिरिक्त गृही आचार्यों का बहुत बड़ा सहयोग रहेगा। इसलिए यह विद्या जो अब तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी चंद भिक्षुओं तक ही सीमित रहती आयी थी, उसे उन्होंने गृहस्थों के लिए भी सहज सुलभ बना दिया। अनेक विपश्यी गृहस्थ शिष्यों में से एक सयातैजी को इसमें पका कर आचार्य पद पर भी प्रतिष्ठित किया।

ऐसा न करते तो हम गृहस्थों को यह कल्याणी विद्या कैसे उपलब्ध होती? असीम उपकार है भिक्षु प्रवर लैडी सयाडोजी का हम पर और उनके प्रति असीम ही है हमारी श्रद्धा, असीम है कृतज्ञता।

(७)

और एक चित्र उभरता है – दादागुरु सयातै जी का। कोई सद्गृहस्थ भी विपश्यना विद्या का सफल आचार्य बन सकता है इसका एक प्रयोग भदन्त लैडी सयाडोजी ने किया और इस प्रयोग में सयातैजी केवल खरे ही नहीं उतरे बल्कि भावी गृहस्थ आचार्यों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श बन गये, प्रेरणा के स्रोत बन गये।

सयातैजी का हम पर असीम उपकार है और उन पर हमारी असीम श्रद्धा है! असीम कृतज्ञता है!

(८)

और एक अत्यंत प्रेरणादायी चित्र उभरता है।

आचार्य पितामह सयातैजी ने चंद भिक्षुओं और गृहस्थों को विपश्यना में पका कर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया, जिनमें से एक थे परम पूज्य धर्मपिता गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन, जो कि विपश्यना आचार्यों की आकाशगंगा में एक ज्वाजल्यमान सितारे सिद्ध हुए। वे ७२ वर्ष की वृद्ध अवस्था तक अपने धर्मपुत्रों व धर्मपुत्रियों को विपश्यना में परिपक्व करते रहे।

उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भगवान बुद्ध के २५०० वर्ष पश्चात द्वितीय बुद्ध-शासन विपश्यना की दुंदुभी बजाता हुआ जागेगा और प्रभूत विश्व कल्याण करेगा। वे बार-बार कहते थे कि अब समय पक गया है। विपश्यना का डंका बज गया है। अब इसके द्वारा होने वाले लोक कल्याण के फैलाव को कोई नहीं रोक सकता।

केवल गौतम बुद्ध ने ही नहीं बल्कि पूर्व काल के सभी बुद्धों ने जहां सम्यक संबोधि प्राप्त की और भविष्य के सभी बुद्धों को भी जहां सम्यक संबोधि प्राप्त होगी, उस पावन भारत भूमि के प्रति उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। इस देश से ही बरमा को शुद्ध धर्म मिला, मुक्तिदायिनी विपश्यना मिली। अतः उसके प्रति उनकी कृतज्ञता बेहद बेमिसाल थी। बरमा द्वारा भारत का ऋण चुकाये जाने की कितनी ललक थी उनके मन में। उसी के परिणामस्वरूप लगभग २००० वर्षों के लंबे अंतराल के बाद सन १९६९ में भारत की यह पुरातन विपश्यना धर्मगंगा अपने उद्गम स्थान में लौट सकी और यहां के लोगों का कल्याण करती हुई विश्व के अनेक देशों में प्रवाहमान होकर जन-जन के दुःखविमोचन का कारण बन सकी।

उनकी ओर से भारत का धर्मऋण चुकाने के लिए उनके प्रतिनिधि स्वरूप उनका धर्मपुत्र भारत आया। केवल वही नहीं बल्कि अनेक जन्मों के हजारों संगी साथी इस कार्य में साथ हो लिये। सभी परम पूज्य गुरुदेव ऊ बा खिन का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी ओर से ही धर्मदान के पुण्य कार्य में लगे हैं और भविष्य में भी लगे रहेंगे।

दूसरी ओर मां सयामा, धर्मबंधु ऊ छिन टिन, धर्मबंधु ऊ टिंयी और धर्मबंधु ऊ को ले भी अपने-अपने क्षेत्र में गुरुदेव के स्वप्न पूरे करने में अथक श्रमशील हैं।

विपुल विश्वकल्याण करती हुई विपश्यना गुरुदेव की प्रबल मंगल मैत्री से जन-जन में फैल रही है। उनका धर्मबल असीम है, अपरिमित है। हम सब पर उनका उपकार असीम है, अपरिमित है। उनके प्रति हम सब की श्रद्धा भी असीम है, अपरिमित है। हमारी कृतज्ञता भी असीम है, अपरिमित है।

विश्वकल्याण का उनका धर्मस्वप्न शीघ्र पूरा हो! जन-जन की स्वस्ति-मुक्ति हो! जन-जन का मंगल हो! कल्याण हो!

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

मुंबई में पूज्य गुरुजी के सार्वजनिक प्रवचन एवं प्रश्नोत्तर

१. ८ सितंबर, ९९. **समयः** रात ८:४५ से १०:००. **स्थानः** कालिदास ऑडिटोरियम, पी.के .रोड, मुलुंड (प.) मुंबई. **विषय; बंधन से मुक्ति की ओर**

२. ९-९-९९. **समयः** रात ९ बजे से. **स्थानः** मानव सेवा संघ हॉल, (किंगसर्कलस्टेशन और सायन अस्पताल के बीच में) सायन, मुंबई. **विषयः कौन है मानव?**

३. ११-९-९९. **समयः** रात ९ से १०:१५ तक. **स्थानः** झवेरबेन पोपटलाल सभागृह, उपाश्रय लेन, जैन उपाश्रय तथा धनजी देवशी राष्ट्रीय कन्याशाला के पास, घाटकोपर (पूर्व). **विषयः कषाय-मुक्ति की साधना**

४. १२-९-९९. **समयः** रात ९ बजे से १०:३०. **स्थानः** नानावटी ऑडिटोरियम, नानावटी अस्पताल, एस. वी. रोड, विलेपारले(प.) **विषयः अंधेरे से प्रकाश की ओर**

५. १४-९-९९. **समयः** प्रातः ९:४५ से ११:१५. **स्थानः** विरला क्रीड़ाकेंद्र,चौपाटी, मुंबई-४. **विषयः क्षमा कैसे मांगें और कैसे करें!**

सूचनाः इंटरनेट पर सभी केंद्रों के नाम-पते, टेलीफोन नं. आदि की सूचनाएं उपलब्ध करायी गयी हैं। अतः केंद्र व्यवस्थापकों से निवेदन है कि यदि इनमें कोई परिवर्तन हो अथवा इनके अतिरिक्त केंद्र पर लोगों की जानकारी में लाने लायक कोई अन्य प्रगति हुई हो तो उसका विवरण निम्न ई-मेल पर भेजें –

अथवा पत्र लिखें तो श्री राधेश्यामजी गोयन्का, पूज्य गुरुजी के मुंबई-पते पर भेज सकते हैं।